

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंधों में कल्पना - सौन्दर्य

डॉ. आरती अग्रवाल
सहायक प्रवक्त्री (हिन्दी विभाग)
दयानन्द महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत
ईमेल:- artiagarwal15324@gmail.com
दूरभाष: 7015102723

संक्षेपिका

कल्पना किसी भी रचना के सौन्दर्य-विधान का वह निर्णायक तत्त्व होता है जो रचनाकार के मानस में अनुभूति से अभिव्यक्ति तक व्याप्त रहता है। कल्पना का यही सौन्दर्य-विधान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध-साहित्य में सर्वत्र अवलोकनीय है। हिन्दी साहित्य की शुक्लोत्तर निबंध-परम्परा के इस शीर्षस्थ निबंधकार ने अनेक अविस्मरणीय निबंधों की रचना की है, जिसमें अपनी कल्पना के हिंडोले पर सवार होकर द्विवेदी अनुभूति जगत में ऊँची उड़ान भरते हैं और अपने निबंधों में उसे तर्कपूर्ण विचार-शृंखला के रूप में प्रस्तुत कर पाठक को अपने मनोरम भाव संसार की सैर करवाते हैं।

कुंजी शब्द - सौन्दर्य स्नात-सौन्दर्य से परिपूर्ण, बीहड़वासी - उबड़-खाबड़ जंगली स्थान का निवासी, द्रुम - पेड़, वेदिका - पीठिका, चौकी (बैठने के लिए), निर्वात - वायुहीन, मलय - चन्दन, मकरंद - फूलों का रस, हिल्लोल - लहर-तरंग, कांचन-पद्म - स्वर्ण-कमल, मराल - हंस, चटुल - चंचल, कुक्कटों-वनमुर्गी

शोधपत्र

कल्पना किसी भी रचना के सौन्दर्य-विधान का निर्णायक तत्त्व होता है, जो रचनाकार के मानस में अनुभूति से अभिव्यक्ति तक व्याप्त रहता है। कल्पना वह रचनात्मक शक्ति है, जिससे रचनाकार को नूतन सृजन और अभिनव रूप विधान की आंतरिक प्रेरणा प्राप्त होती है। कल्पना का व्युत्पत्तिगत अर्थ होता है- (क्लृप+अन+आ) अर्थात् सृष्टि करना।¹ रचना भी रचनाकार की मानस सृष्टि होती है। अपनी इसी मानसी शक्ति के आधार पर कृतिकार संपूर्ण चराचर जगत् से अनुभूतियां ग्रहण करते हुए कुछ विशिष्ट प्रकार की रचना हेतु, अपनी हृदयगत तरंगों से ताल से ताल मिलाते हुए साहित्य को विस्तृत, नवीन एवं सुंदर रूप प्रदान करता है। अपनी इसी अन्तर्निहित प्रतिभा से वह सामान्य से ही रस लेकर साधारण सी विशयवस्तु को असाधारण बनाने की क्षमता रखता है। इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कल्पना को 'सृजक की सर्जनेच्छा' का विलास कहते हैं। उनके विचारानुसार, "कल्पना में ही साहित्यकार इस जगत् के समानांतर नए जगत् की सृष्टि करता है। इस जगत् की विरुपताओं और विसदृश परिस्थितियों से क्लान्त होकर एक अनुकूल और मनोरम जगत् की सृष्टि करता है। जब वह सत्य को ही सुंदर कहने की इच्छा रखता है, तो कल्पना का ही आश्रय लेता है। इसके बिना कवि मनोरम भाव को हृदयहारी बनाकर अपना वक्तव्य कह ही नहीं सकता।"²

अन्यत्र वे इसी संदर्भ को कुछ इस प्रकार स्पष्ट करते हैं कि अपनी चेतना में आरोपित इसी कल्पना रूपी कल्पवृक्ष के सहारे साहित्य सृजक जो कुछ भी रचने की इच्छा रखता है, रचता है। तभी सृजनात्मक प्रज्ञा का स्वामी प्रजापति अर्थात् साक्षात् ब्रह्म कहलाता है-

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।

यथास्मै रोचते विश्वं तथैतत् प्रतिपद्यते।³

साहित्य-संसार का प्रजापति कवि (रचनाकार) ही है, उसे जैसा रुचता है, वैसा ही वह रचता है। ठीक इसी प्रकार द्विवेदी को अपनी मानस चेतना में जो रुचिकर लगा, वह रचा, अत्यन्त सटीक, सार्थक एवं सौन्दर्यस्नात। कल्पना का यह सौष्ठव द्विवेदी के निबंधों में सर्वत्र अवलोकनीय है- अनुभूति (भावगत) से अभिव्यक्ति (भाषा शिल्पगत) तक। अपनी कल्पना के हिंडोले पर सवार होकर द्विवेदी अनुभूति जगत् में ऊँची से ऊँची उड़ान भरते हैं और अपने निबंधों में उसे तर्कपूर्ण विचार शृंखला के रूप में प्रस्तुत कर पाठक को भी इस मनोरम जगत् की सैर करवाते हैं।

आचार्य द्विवेदी हिन्दी-साहित्य की शुक्लोत्तर निबंध परम्परा के शीर्षस्थ निबंधकार हैं जिन्होंने लगभग दो सौ से अधिक निबंधों की रचना की है। उनके ये निबंध ‘अशोक के फूल’, ‘विचार प्रवाह’, ‘विचार और वितर्क’, कल्पलता, कुटज और आलोक पर्व नामक निबंध संग्रहों में संकलित हैं। इन निबंधों में द्विवेदी का कल्पना-मयूर प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण से लेकर, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, पुराण आदि की गहन गुफाओं तक, परम्परा से आधुनिकता तक, विराट आध्यात्मिक ज्ञान से सूक्ष्म मनोविज्ञान एवं स्थूल भौतिक विज्ञान तक, आदमी के देवत्व से दैत्यत्व के विषयों तक विविध वर्णी पंख फैला कर नृत्य करता दृष्टिगत होता है। किंतु कल्पना प्रवण होने पर भी द्विवेदी का चिंतन पूरी तरह से धरती से जुड़ा है। यथार्थ के धरातल से नाता तोड़ पांडित्य के व्योम में विचरण करना इनकी साहित्यिक चेतना को अभीष्ट नहीं। इसीलिए निरंतर अपने देश की मिट्टी से सम्बेदनाओं का रस ग्रहण करते हुए द्विवेदी का भारती-मन अंधकार में गहराती परिस्थितियों को उजागर करने में तथा मनुष्यता का सही मार्गदर्शन करने में ही अपने निबंधों की चरम सार्थकता मानते हैं। इसीलिए वे कहते हैं- ‘‘साहित्य का कारोबार मनुष्य के समूचे जीवन को लेकर है। साहित्य केवल बुद्धि विलास नहीं है। वह जीवन की उपेक्षा करके सजीव नहीं रह सकता।’’¹

साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि कल्पनाशील रचनाकार को अपने बुद्धि-विलास में मदमस्त हो सहृदय पाठक को पांडित्यपूर्ण विचारों से आतंकित नहीं करना चाहिए क्योंकि, ‘‘साधारण मनुष्य के लिए यह समझना अत्यन्त कठिन है कि कब पंडित का शास्त्र उसकी बुद्धि को दबा देता है और कब उसकी बुद्धि शास्त्र को।’’¹ अतः जिन विचारों को बड़े बड़े पंडित अपना पांडित्य प्रदर्शन करने हेतु ऊबाऊ, बोझिल बनाकर प्रस्तुत करते हैं; पाठक को अपनी कल्पना के चमत्कार से चमत्कृत कर देना चाहते हैं; उन विचारों को द्विवेदी अपने निबंधों में अत्यन्त सहजता एवं सरलता से हृदयग्राही बनाकर प्रस्तुत करते हैं। समग्रतः इन्हीं विशेषताओं को दृष्टिपथ में रखते हुए हम द्विवेदी के निबंध साहित्य में कल्पना-लालित्य का अवगाहन करेंगे:-

यथा ‘नाखून क्यों बढ़ते हैं?’ द्विवेदी द्वारा रचित उत्कृष्ट निबंध है, जिसमें इनकी विलक्षण कल्पना का सौन्दर्य पाठक चित् को आश्चर्यचकित कर देता है। अपनी सात वर्षीय पुत्री के इस अति साधारण एवं चिर-परिचित तथ्य पर प्रश्न करने पर ‘कि नाखून क्यों बढ़ते हैं?’ द्विवेदी की कल्पनावृत्ति को नई दृष्टि से सोचने के लिए विवश कर देता है और लेखक इसी सामान्य से विचार पर अपने कल्पना-कौशल से रच डालते हैं ऐसा अद्भुत एवं अविस्मरणीय निबंध! छोटे से नाखून की मानवीय जीवन में हिंसा और हिंसक हथियारों के जनक के रूप में लेखक की संकल्पना अद्वितीय पहलुओं को उजागर करती है। वे कहते हैं कि कुछ लाख वर्षों की बात है, जब मनुष्य

जंगली था, वन मानुष था। तब उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वह उसके अस्त्र-शस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों (आदिम सभ्यता) में उसे जूझना पड़ता था। प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक था। फिर धीरे धीरे वह अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में आने लगे। रामचन्द्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे। उसने हड्डियों से भी हथियार बनाए। (दधीचि मुनि की हड्डियों से निर्मित इन्द्र का वज्र त्याग और दान का अनुपम प्रतीक है) मनुष्य और आगे बढ़ा तो उसने धातु के हथियार बनाए। पत्तीते वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, बमों ने, तोपों ने, बमवर्षक वायुयानों ने मानव इतिहास को हिंसा के किस कीचड़ भरे घाट तक घसीटा है, यह सर्वविदित है और अब मनुष्य एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा।² इस प्रकार आदिम काल से आधुनिक काल तक प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की सूदूर यात्रा करते हुए, अस्त्र-शस्त्र एवं अत्याधुनिक हथियारों के मूल में एक अत्यल्प से नाखून की कल्पना वास्तव में द्विवेदी की अद्वितीय मानस प्रतिभा का परिचय देती हैं। कुछ ऐसी ही वैचारिकता कल्पना के सुंदर सांचे में ढल कर ‘ठाकुर जी की बटोर’ नामक निबंध में द्रष्टव्य है। इस निबंध में द्विवेदी हिन्दू-मुसलमान वैमनस्य के संदर्भ में जातीय, देशीय, धार्मिक विभेदता के भीतर एक मूलभूत अभेदता तर्क सहित सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इसमें वे इस्लाम धर्म (मानवीकरण रूप में) से सीधी बातचीत करते हुए उसकी शंकाओं को दूर करने का प्रयत्न करते हैं जिसमें इस्लाम कहता है, “मैं संस्कृति फैलाने नहीं आया, कुछ तोड़ने आया हूँ। हजारों को दास बनाकर, लाखों को दलित और अस्पृश्य बनाकर जिस संस्कृति का जन्म होता है, वहाँ कुफ्र (पाप) का प्राबल्य होता है। मैं उसे साफ करने आया हूँ...। मैं धरती को एक पक्के रंग में रंगी देखना चाहता हूँ। भले ही वह रंग नीला हो! (नीला इस्लाम में दरगाह पर ओढ़ने वाली चादर का होता है) इस पर द्विवेदी विस्मयता और आशंका से इस्लाम को बड़ी शालीनता से जवाब देते हैं कि ‘संसार को एक रंग में रंगने का प्रयास क्या मनुष्यता के वैचित्र्यपूर्ण विकास में बाधा पहुंचाना नहीं है। चमेली को गुलाब बनाने का प्रयत्न क्या श्रेयस्कर है? यह तो स्वयं ही भयंकर कुफ्र है। इस पर इस्लाम गरज कर कहता है- मेरा अभिप्राय: यह नहीं है। मैं कहता हूँ कि गुलाब, चमेली, आम, धतूरा चाहे कोई भी हो, सबको एक समान आसमान, एक ही समान खाद और पानी की सुविधा, उपचार प्राप्त होने चाहिए। इस पर फिर द्विवेदी बुद्धि का आश्रय लेते हुए तर्क सहित कहते हैं, कि ऐसे भी तो पौधे हो सकते हैं, जो गुलाब और चमेली के अनुकूल खाद पाकर ही मुरझा जाएं। कुछ पौधे पानी से ही बढ़ते हैं, तो कुछ पानी से ही मर जाते हैं (सबकी अलग अलग प्रकृति होने के कारण) उनका उपाय क्या होगा? इस्लाम ने इस बार और कड़क कर जवाब दिया कि मर जाएं तो मर जाने दो, मुझे परवाह नहीं.... इस्लाम अपनी कृपाण पर कभी संदेह नहीं करता।’¹ इस प्रकार इस पूरे वार्तालाप में द्विवेदी इस्लाम धर्म की साम्प्रदायिक कट्टरता, कुतर्कपूर्ण मानसिकता एवं इस्लाम की आक्रोषपूर्ण धर्म संबंधी मान्यताओं को अत्यन्त सहजता से स्पष्ट कर देते हैं। चाह कर भी वे इस्लाम की जबरन थोपने वाली धार्मिक असहिष्णुता को तथा हिंदू-मुसलमान की बढ़ती खाई को कम नहीं कर पाते।

ऐसी ही अनेक सुंदर और सार्थक कल्पनाओं के आधार पर द्विवेदी ने अदृष्ट को दृष्ट बनाने में अकथनीय सफलता प्राप्त की है। इन्होंने अपनी भावनाओं का इतना सजीव चित्रण किया है, जो एकदम से मानस पटल पर अप्रत्यक्ष हो उठता है। इस स्थिति में कल्पना की उनकी ऊँची उड़ान अतीत, वर्तमान और भविष्य की सभी सीमाएं लांघ जाती हैं। उनकी कल्पना-सृष्टि का यह उत्कृष्ट उदाहरण इन पंक्तियों में दर्शनीय है, जहां वे मध्यकालीन संत

साधकों हरिदास स्वामी, मीराबाई तथा गुरु गोबिन्द सिंह जी के शिष्य बंदा बैरागी को एक साथ एक आंदोलन में जाते हुए कल्पित करते हैं, “मुर्शिदाबाद की सड़कों पर हरिदास भावावेश में हरिनाम संकीर्तन करते जा रहे हैं और जल्लाद उन पर अविश्रान्त भाव से दण्ड प्रहार करते जा रहे हैं; चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं पड़ती....। मेवाड़ के राजवंश की शोभा और शान मीराबाई दर-विगलित नयन, कम्पयान कण्ठ स्वर और खिन्न गात्र से गोपाल लाल के विरह में नृत्य कर रहीं हैं; राज परिचारक ने जहर का प्याला दिया है, वे अजब लापरवाही से पी रही हैं....। बन्दा वीर बंदी होकर बैठा है.... जल्लाद बन्दा की गोद में उसका कोमल बच्चा डालता है, आज्ञा मिलती है, इसे अपने हाथों से मार डालो। बन्दा कृपाण उठाता है....”³³⁶¹

प्रकृति के संदर्भ में द्विवेदी का कल्पना-लालित्य वर्णनातीत है, अनुपम है। मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से जोड़कर प्रकृति के रूप सौंदर्य का चित्रण इनके कल्पना-विलास की चरम परिणति है। प्रकृति की गोद में बैठकर इनका चितेरा मन विभिन्न रूपों में विभिन्न लीलाएं रचता है। इन निबंधों में द्विवेदी कभी ‘शरीष के फूल’ की तरह फक्कड़ अवधूत, कभी देवदारु के समान स्थित-प्रज्ञ व्योम केश, कभी ‘कुटज’ की तरह मनमौजी बीहड़वासी, तो कभी ‘आम बौरा गए’ में मानव प्रेम और नवसृजन के अभिलाषी बन कर अवतरित होते हैं। ‘देवदारु’ निबन्ध में ‘महादेव’ द्वारा ज्ञान का तीसरा नेत्र खुलने पर ‘कामदेव’ के कामुक रूप को भस्मीभूत करने वाला पौराणिक प्रसंग उनकी कल्पना में कुछ इस प्रकार सृजित हुआ है, ‘एक दिन कैलाश की देवदारु-द्रुम वेदिका पर निर्वात-निष्कम्प-प्रदीप की भांति स्थिर भाव से आसीन महादेव के सामने अपने ही यौवन भार से दबी हुई बसन्त पुष्पों की आभरण-धारिणी पार्वती.... उस तपस्वी (शिव) के पद-प्रान्त में झुकी थी तो योगीराज क्षणभर के लिए चंचल हो उठे थे.... उन्होंने क्षण भर के लिए सारे संसार को मधुमय देखा था।.... किन्तु एक ही क्षण में योगासनीन महादेव संभल गए। उन्हें किसी अपदेवता का कुसुम (प्रेम) बाण-संधान उचित नहीं जान पड़ा।.... महादेव ने आँखें खोल दी त्रैलोक्य को मदविह्वल कर देने वाला देवता कामदेव भस्म हो गया।’¹ इन पंक्तियों में लेखक प्रथम दर्शन के प्रेम को जो केवल बाह्य रूपाकर्षण के कारण हो जाता है, क्षणिक एवं व्यर्थ बतलाते हैं जो शरीर से सम्बद्ध होने के कारण नश्वर होता है, असफल हो जाता है। इसलिए प्रेम केवल वही मंगलकारी होता है, जो त्याग, संयम और तपस्या से फलीभूत हो, जैसा शिव-पार्वती का।

भावों के समान ही भाषा भी इनकी कल्पना के आश्रय से अप्रतिम सौन्दर्य से युक्त हो जाती है। कल्पना के पंख लगाकर इनकी अनुभूति जब तीव्र गति से उड़ान भरती है, तो शब्द, अर्थ, वाक्य-संरचना तथा भावाभिव्यंजना में अद्भुत लालित्य और लयात्मकता का समावेश हो जाता है। भाषा की रसमयता और रमणीयता द्विवेदी की इन पंक्तियों में कविता बनकर बहती हुई सी प्रतीत होती है, “आज मेरी कल्पने! उड़ चल पुनः उस देश में, जिसमें मलय मकरंद वासित वायु के हिल्लोल से हैं हिल रहे दुर्ललित कांचन-पदम इठलाते नवीन मराल दम्पति परम उत्सुकता सहित अद्भोपभुक्त मृणाल-कंवलों से परस्पर को समादृत कर रहे उन्मद-चटुल जल कुक्कटों की भांति कल कल्लोल से करती मेरा हृदय अभिभूत।”³³⁷² वास्तव में इन पंक्तियों में निहित अद्भुत शब्द-प्रवाह, काव्यमयता, छंद-विधान, अलंकार-योजना गद्य में पद्य का आभास देती है और द्विवेदी के सम्मुख दिग्गज कवियों को भी श्रद्धान्त होने के लिए विवश कर देती है।

निष्कर्ष

आलोच्य निबंधकार ने अपनी कल्पना से प्रत्येक विचार, भाव एवं विषय में सरस, सार्थक एवं सुंदर रंग भरे हैं और सहृदय पाठक के समक्ष वैसा ही साकार किया जैसा द्विवेदी की अंतरचेतना ने अनुभव किया। अपने भाव जगत् के इस प्रजापति ने जीवन के छोटे-बड़े सभी प्रकार के अनुभवों को आत्मसात् करते हुए अपनी विचित्र कला भंगिमा और संधिनी प्रज्ञा से जैसा रूचा, वैसा साहित्य में रचा और पाठक के चित्त में लुभावने रसलोक का निर्माण किया। निस्संदेह 'स्व'-अनुभूतियों को 'पर' चित्त में ज्यों का त्यों उतार देने में सक्षम द्विवेदी की मनभावनी एवं चित्तहारिणी कल्पना उनके निबंधों में अनुभूति से अभिव्यक्ति तक सौन्दर्य की कसौटी पर नितान्त खरी उतरती है।

सन्दर्भ सूची

1. कुमार विमल, सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व, पृ. 129.
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग-10, पृ. 161.
3. वही, भाग-7, पृ. 141.
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग-10, पृ. 36
5. वही, भाग-9, पृ. 167.
6. वही, भाग-9, पृ. 106.
7. वही, भाग-9, पृ. 164-165.
8. वही, भाग-9, पृ. 166.
9. वही, भाग-10, पृ. 68-69.
10. वही, भाग-9, पृ. 233-234.